

## अनुभूमिका

### बुझती राख में चमकती चिनगारियाँ

—संत समीर

प्रतिष्ठित पत्रकार और समाज-कर्मि

#### दृश्य एक:

छह जून दो हजार इक्कीस। ऑपरेशन ब्लू स्टार की 37वीं बरसी। बाहर अमृतसर के आसमान में सूरज तप रहा है; और स्वर्ण मंदिर परिसर के भीतर सैंकड़ों दिलों में खालिस्तान की आग जल रही है। जरनैल सिंह भिंडरॉवाले के पोस्टर और खालिस्तानी झंडे भारत को तोड़कर अलग किए जा सकने वाले उस टुकड़े की तलाश में हैं, जहाँ कि वे शान से लहरा सकें। श्री हरमंदिर साहिब तक जाने वाली हैरिटेज स्ट्रीट पर सेना ने फ्लैग मार्च किया है; और आसपास के इलाकों का मंजर किसी सैनिक छावनी से कम नहीं। छह हजार सैनिक किसी अनहोनी से निपटने को मुस्तैद हैं। ठीक एक हफ्ते पहले शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी की अध्यक्ष बीबी जागीर कौर ने भी यह बयान देकर आग में घी डालने का काम कर दिया है कि सिख समुदाय 1984 की घटनाओं को कभी भूल नहीं सकता।

#### दृश्य दो:

एक साल और पीछे। ऑपरेशन ब्लू स्टार की 36वीं बरसी का ठीक यही दिन। अकाल तख्त के जत्थेदार ज्ञानी हरप्रीत सिंह ने इंदिरा सरकार की इस कार्रवाई को '1984 का प्रलय' करार दिया है; और सिखों के लिए अलग राज्य खालिस्तान का मुद्दा उठाते हुए कहा है कि, "दुनिया का हर सिख खालिस्तान चाहता है। और अगर भारत सरकार इसकी पेशकश करेगी तो हम इसे स्वीकार करेंगे।" यह भी कि, "सेना की वह कार्रवाई दो देशों के बीच युद्ध के समान थी; यह किसी एक देश का दूसरे देश पर हमला करने जैसा था।" शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष गोबिंद सिंह लोंगोवाल ने भी सुर में सुर मिलाया है।

इस तरह, ऑपरेशन ब्लू स्टार के तीन दशक बीत जाने के बाद ऐसा पहली बार हुआ है, जब अकाल तख्त और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के प्रमुखों ने सार्वजनिक रूप से एक साथ अलग खालिस्तान की माँग का समर्थन किया है। नतीजतन, खालिस्तान समर्थकों की गहमागहमी बढ़ गई है; और हवाओं में 'खालिस्तान जिंदाबाद' के नारे कुछ और ऊँचाई तक गूँजने लगे हैं।

## दृश्य तीन:

ऑपरेशन ब्लू स्टार की 35वीं बरसी। श्री हरमंदिर साहिब में खालिस्तान समर्थकों ने तलवारें लहराई और 'खालिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाए। चरमपंथियों ने श्री अकाल तख्त साहिब के भीतर दाखिल होने की कोशिश की; लेकिन टास्क फोर्स व सादे कपड़ों में ड्यूटी कर रहे पुलिस के जवानों ने उन्हें रोका। इस दौरान कुछ युवक उग्र हो गए और उन्होंने एसजीपीसी द्वारा श्री अकाल तख्त साहिब की तरफ के रास्ते में लगाई गई बाड़ तोड़ दी। बाड़ तोड़ने के बाद माहौल ऐसा तनावपूर्ण हुआ कि दोनों पक्ष आपस में भिड़ने को तैयार हो गए। बाहर का दृश्य हर साल की तरह किसी सैनिक छावनी जैसा ही था।

ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद से साल-दर-साल इस दिन का करीब-करीब यही मंजर हम देखते आ रहे हैं। मतलब कि बुझती राख में दबी हुई चिनगारियाँ चमकने को आज भी बेताब हैं। खालिस्तान समर्थकों को शह देने वाली ताकतें एक हद तक हताश भले हों, पर समाप्त नहीं हैं। पड़ोसी पाकिस्तान के नापाक इरादे चरमपंथियों के जख्म कुरेदने के मौके तलाशते रहते हैं। खालिस्तान समर्थक संगठन 'सिख फॉर जस्टिस' प्रतिबंधों के बावजूद अपनी सक्रियता बनाए हुए है। बीते साल उसकी एक-दो नहीं, चालीस वैबसाइटें ब्लॉक की गई हैं। कुछ साल और पीछे जाएँ तो सन् 2013 में ऑपरेशन ब्लू स्टार का नेतृत्व करने वाले सेवानिवृत्त लेफ्टिनेंट जनरल कुलदीप सिंह बरार पर लंदन में हुए जानलेवा हमले को भी नहीं भुलाया जा सकता।

बहरहाल, सैंतीस साल बाद आज भी जब अतीत के पन्ने पलटे जाते हैं तो कई प्रश्न सही उत्तरों की तलाश करते नजर आते हैं। क्या ऑपरेशन ब्लू स्टार परिस्थितिजन्य अनिवार्य परिघटना थी? या क्या इसे टाला जा सकता था? क्या श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन की यह सबसे बड़ी गलती

थी? अथवा क्या यह उनकी दूरदर्शिता और सूझबूझ का नतीजा था? क्या उनके पास और कोई रास्ता नहीं बचा था? ऑपरेशन ब्लू स्टार क्या सचमुच सिख धर्म की देह पर ऐसा घाव है, जो हमेशा रिसता रहेगा? स्थिति को इतना खराब क्यों होने दिया गया कि ऐसी कार्रवाई करने की जरूरत पड़ी? ऑपरेशन ब्लू स्टार न होता तो क्या होता?

इन या इन जैसे अन्यान्य प्रश्नों को खँगाल कर धारदार भाषा में सटीक उत्तर देने की बात जब भी आती है तो पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार का स्मरण बरबस हो आता है। वे उस दौर के अजब विद्वान, अद्भुत वक्ता और कालजयी लेखक थे। उनके तार्किक और तथ्यात्मक लेखन का सहज प्रवाह हृदय तल को छू लेने वाला था। ऑपरेशन ब्लू स्टार के चंद दिनों बाद ही उन्होंने 'तूफान के दौर से पंजाब' शीर्षक से पुस्तक लिखी तो हलचल-सी मच गई। इस पुस्तक में क्षितीश जी की विद्वत्ता ने सिख इतिहास को गहरे उतर कर देखा है; तो उनके भीतर के पत्रकार ने समूचे घटनाक्रम के तथ्यों की महीन पड़ताल की है। ऑपरेशन ब्लू स्टार को परत-दर-परत देखना हो तो आज भी यह पुस्तक उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी तब थी। समझने की बात बस इतनी है कि, तब का पंजाब लगभग चार दशक बाद आज कहाँ खड़ा है? और सिख समुदाय खालिस्तान के मुद्दे को अब किस नजरिये से देखता है?

आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि किसी घटना के तुरंत बाद उसका सही विश्लेषण पूरी तरह से संभव नहीं हो पाता। घटना के सभी पहलुओं को ठीक-ठीक और निष्पक्ष भाव से देख पाने के लिए कुछ समय का इंतजार जरूरी हो सकता है। लेकिन, ऑपरेशन ब्लू स्टार और पंजाब समस्या के बारे में यह स्थिति कहीं-कहीं उल्टी नजर आती है। कभी इस कदम के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी की प्रशंसा की जाती थी, पर आज की तारीख में अधिकतर बुद्धिजीवी मानते हैं कि ऑपरेशन ब्लू स्टार और भिंडरॉवाले, दोनों श्रीमती गांधी की गलत नीतियों का नतीजा थे। विश्लेषक मानते हैं कि भिंडरॉवाले को आगे बढ़ाने में इंदिरा गांधी के विश्वस्त ज्ञानी जैल सिंह जैसे कुछ काँग्रेसियों का हाथ था। उनके बेटे संजय गांधी ने भिंडरॉवाले को शह देकर उसे पंजाब का 'अघोषित मुखिया' बना दिया। इसकी वजह यह थी कि काँग्रेस को पंजाब में अकालियों के बढ़ते प्रभामंडल को ध्वस्त करना था; और तेजतर्रार भिंडरॉवाले इसके लिए उपयुक्त लग रहा था। प्रसिद्ध पत्रकार स्व. कुलदीप नैयर

ने अपनी पुस्तक 'बियांड द लाईंस एन ऑटोबायोग्राफी' में लिखा है—  
 “संजय गांधी को लगता था कि अकाली दल के तत्कालीन मुखिया संत हरचरण सिंह लोंगोवाल की काट के रूप में एक और संत को खड़ा किया जा सकता है। यह संत उन्हें दमदमी टकसाल के संत भिंडरॉवाले के रूप में मिला।”

ऊपर से एकबारगी यह बात सही लगती है और श्रीमती इंदिरा गांधी कठघरे में खड़ी नजर आती हैं, लेकिन जरा गहरे उतरें तो पता चलेगा कि यह समस्या का सरलीकरण है। वास्तव में पंजाब में उग्रवाद की समस्या की जड़ में सिख समुदाय के मन में घर कर चुका अलगाववाद है; और अलगाववाद की यह मानसिकता इंदिरा गांधी की पैदा की हुई नहीं थी। सनद रहे कि सन् 1947 में जब अँग्रेज भारत को दो देशों में बाँटने की योजना बना रहे थे तो उसी दौरान कुछ सिख नेताओं ने सिख समुदाय के लिए एक अलग देश 'खालिस्तान' की माँग जोर-शोर से उठाई। अलगाववाद के बीज इसके भी पहले तभी पड़ चुके थे, जबकि जून, 1926 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के चुनाव में मास्टर तारा सिंह गुट का वर्चस्व कायम हुआ। दिलचस्प है कि पंजाब में पाकिस्तान की माँग का विरोध हिंदू व सिखों ने मिलकर किया था। परंतु लुधियाना के डॉ. वीर सिंह भट्टी के अनुसार सिखों के लिए अलग 'खालिस्तान' के समर्थन में पर्चा छापने के बाद यह धीरे-धीरे अभियान की शक्ति लेता गया; और आजादी के बाद पंजाब में चल रही राजनीतिक पैतरेबाजियों और पाकिस्तान की हरकतों ने इसे नासूर बनाकर ऑपरेशन ब्लू स्टार की परिणति तक पहुँचा दिया।

सिख इतिहास के कुछ और पीछे के पन्ने पलटें तो पता चलता है कि अलग राज्य की कामना के बीज शुरुआती दौर से ही पड़ चुके थे; भले ही उनका रूप कुछ उदात्त और हिंदू धर्म के रक्षक का रहा हो। खुशवंत सिंह अपनी पुस्तक 'सिखों का इतिहास' में लिखते हैं—“सिखों में 'अलग राज्य' की कल्पना हमेशा से ही थी। रोज की अरदास के बाद गुरु गोविंद सिंह का 'राज करेगा खालसा' नारा लगाया जाता है। इस नारे ने अलग राज्य के ख्वाब को हमेशा जिंदा रखा।....सिख नेताओं ने कहना शुरू कर दिया था कि अँग्रेजों के बाद पंजाब पर सिखों का हक है।” खैर, सिखों के इस इतिहास को क्षितीश कुमार वेदालंकार जी ने इस पुस्तक में बड़ी गहराई से खँगाला है।

यहीं पर किंचित् ठहरें, तो वर्षों से चलते आ रहे अलगाववाद के पूरे परिदृश्य में साठ के दशक में पंजाब की अर्थव्यवस्था में अचानक से आए बदलावों की भूमिका की भी शिनाख्त की जा सकती है। ठीक है कि 'राज करेगा खालसा' की मनोभावना सिख समुदाय में देश के बँटवारे के समय से ही रही; पर आजाद भारत में खालिस्तान आंदोलन के लिए अगर अत्याधुनिक हथियारों वाला हिंसक रूप अख्तिyar करना आसान होता गया, तो इसके पीछे का एक जरूरी पहलू आमतौर पर निगाहों से ओझल रह जाता है। यह पहलू पंजाब की अर्थव्यवस्था और हरित क्रांति से जुड़ा है। अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक नार्मन बोरलॉग की कृषि-क्रांति के प्रयोगों ने एम. एस. स्वामीनाथन की अगुआई में खाद्यान्न संकट से गुजरते इस देश में सन् 1960 के दशक में जब दस्तक दी, तो पंजाबियों की मेहनत ने इसे सबसे तेजी से फलीभूत किया।

हरित क्रांति के नुकसानदेह पार्श्व-प्रभावों की बात अलग है, पर इसने पंजाब को समृद्ध किया। इसका कुछ अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि साठ के दशक के उत्तरार्ध में पंजाब में धान की खेती करीब 3.9 लाख हेक्टेयर में ही होती थी; पर हरित क्रांति के बाद बढ़ते-बढ़ते अब यह आठ गुना ज्यादा तक पहुँच चुकी है। गेहूँ की खेती भी 22.99 लाख हेक्टेयर से बढ़कर आज डेढ़ गुना ज्यादा दिखाई देती है। हरित क्रांति मूलतः धान-गेहूँ क्रांति थी, पर इसने पंजाब को कृषि के मामले में देश के अन्य राज्यों से अलग खड़ा कर दिया। पंजाब अन्नदाता की भूमिका ग्रहण करने लगा; और कई राज्यों से लोग खेती मजदूर बनकर वहाँ पहुँचने लगे। पंजाब समृद्ध होता गया। वर्चस्व में सिख समुदाय था, तो समृद्धि भी अधिकांश में उसी के पास आई। और इस तरह बहुसंख्य सिख समुदाय एक विशेष विशिष्टताबोध से भर उठा। यह भी याद रखना चाहिए कि आनंदपुर साहिब प्रस्ताव (सन् 1973) जब आया, तो पृष्ठभूमि में पंजाब में हरित क्रांति-जनित समृद्धि दिखाई देने लगी थी। इस प्रस्ताव को इस रूप में प्रस्तुत किया गया था जैसे कि यह विकेंद्रीकरण और राज्यों की स्वायत्तता का राजनैतिक दस्तावेज हो; पर सच्चाई यह नहीं थी। इसका निहित उद्देश्य दिनोंदिन बढ़ रही पंजाब की संपन्नता को देश के अन्य भूभागों में किसी भी रूप में बँटने से बचाना और अकाली वर्चस्व को कायम करना था। पंजाब के किसान यह तो देख रहे थे कि उनकी मेहनत रंग लाई है और समृद्धि बढ़ रही है, पर वे यह नहीं देखना

चाहते थे कि हरित क्रांति के उनके पुरुषार्थ में साधन पूरे देश के लगे हैं।

विडंबना ही है कि हरित क्रांति ने पंजाब में खुशहाली बिखेरने के बजाय अलगाववाद की पहले से विद्यमान मानसिकता को और बल दिया। धनी और निर्धन के बीच की खाई कुछ और बढ़ी; और अक्सर संघर्ष की स्थितियाँ भी पैदा होने लगीं। हरित क्रांति ने पंजाब की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ वहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक सोच में भी विक्षोभ पैदा किए। नशे के साथ नैतिक समस्याओं की तो कथा ही अलग है। वास्तव में हरित क्रांति से आई समृद्धि ने हथियारों तक पहुँच आसान बना दी; और इस वजह से भिंडरौवाले के लिए अपने जोशीले भाषणों के जरिये सिख युवकों को भड़काना भी आसान बन गया कि, वे हथियारों के बल पर खालिस्तान हासिल करने में कामयाब हो सकते हैं। हरित क्रांति की समृद्धि ने सिख युवकों के लिए यह सोचना भी आसान बनाया कि वे खेती-किसानी की तुलना में कहीं बेहतर जीवनशैली हासिल करने लिए विदेशों में आसानी से अपनी जगह बना सकते हैं। खुशहाल जिंदगी की चाह में कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, अमेरिका वगैरह में धीरे-धीरे सिखों की अच्छी-खासी आबादी पहुँचने लगी।

पंजाब में उग्रवाद ने जोर पकड़ा तो विदेशों में रह रहे इस सिख समुदाय ने उग्रवादियों को भरपूर चंदा दिया। इसी के साथ हरित क्रांति ने जो सामाजिक-आर्थिक बदलाव पैदा किए, उनके चलते पंजाब में राजनीतिक गुटबाजियों को हवा मिलनी शुरू हुई और सिख समुदाय के एक हिस्से के बीच देश के सत्ता प्रतिष्ठान या कहीं संघ के साथ तनाव बढ़ा। पाकिस्तान ने भी माहौल अनुकूल देखकर खालिस्तान आंदोलन को परोक्ष समर्थन देने में भरपूर ताकत लगानी शुरू कर दी। जाहिर है, खालिस्तानी हवा के बवंडर बनने के सारे कारण सामने थे, उग्रवादियों की उम्मीदें आसमान में बारूद के गोले उछाल रही थीं; और आग ऐसी लगी कि ऑपरेशन ब्लू स्टार से पैदा हुई झुलसन और तपन पंजाब की धरती आज भी महसूस करती है।

सिख नेताओं के राजनीतिक मानस की ठीक-ठीक पहचान करने की कोशिश करें तो कहना कुछ आसान हो जाता है कि इतिहास की इस धारा को किन मोड़ों से गुजरना था। ऐसे में, ऑपरेशन ब्लू स्टार इंदिरा गांधी की दूरदर्शिता थी या भूल; सिखों के साथ अन्याय हुआ या यह परिस्थितिजन्य परिणाम था; यह सब समझने के लिए उस समय पंजाब में जो चल रहा था, उसे मन के तल पर रूपायित करके महसूस करने की जरूरत है;

महज ऊपरी तर्क-वितर्क से काम नहीं चलेगा। उस स्थिति को ठीक-ठीक समझने की जरूरत है, जबकि स्वर्ण मंदिर का दृश्य किसी अभेद्य किले के मानिंद दिखाई देने लगा था। उस दौर का हर किस्म का अत्याधुनिक हथियार स्वर्ण मंदिर में मौजूद था। लाइट मशीनगनों से लेकर स्टेन गन, सैल्फ लोडिंग राइफल, हर तरह के रिवाल्वर, मोर्टार, ऐंटी टैंक हथियार और रॉकेट लांचर तक। किसी बाहरी आक्रमण से निपटने के लिए जमीन से लेकर मंदिर के बुर्ज तक हथियारबंद आतंकी तैनात थे। स्वर्ण मंदिर के साथ-साथ कुछ और गुरुद्वारों को युद्ध का किला बनाने की तैयारी सन् 1979 से जारी थी। जनवरी, 1984 तक तैंतालीस हजार युवकों को हथियार चलाने, आतंक फैलाने का प्रशिक्षण दिया जा चुका था। सिख समुदाय का पवित्रतम पूजास्थल अगर मारकाट मचाने और आतंक फैलाने का केंद्र बन जाए, तो इसकी अंतिम परिणति आखिर और क्या हो सकती है? सोचने की बात है कि भिंडरौवाले को अकाल तख्त में डेरा जमाने की इजाजत क्यों दी गई? क्या ऐसा नहीं लगता कि मंदिर की संचालक मंडली इस तथाकथित संत की बंधक बन चुकी थी?

बार-बार कहा जाता है कि यह सेना के अपने ही लोगों के खिलाफ मोर्चा खोलने की घटना है; पर यह कहते हुए इस बात पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि जब कुछ लोग अपने ही देश को तोड़ने की साजिश रच रहे हों; और इसके लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हों, तो क्या उन्हें 'अपने ही लोग' कहा जा सकता है? यह बात जरूर है कि ऐसे लोगों की शिनाख्त कर पाना आमजन के लिए प्रायः कठिन होता है, और वे बहकावे में आकर उनके इर्दगिर्द सुरक्षा कवच के रूप में खड़े हो जाते हैं; और अंततः उन्हें ही जान-माल का सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ता है। हम जानते ही हैं कि ऑपरेशन ब्लू स्टार में चरमपंथियों के अलावा बड़ी संख्या में भोले-भाले श्रद्धालुओं को भी अपने प्राण गँवाने पड़े।

ऑपरेशन ब्लू स्टार को आज के बुद्धिजीवी अगर इंदिरा गांधी के जीवन की सबसे बड़ी चूक के रूप में देखने लगे हैं, तो इसकी बड़ी वजह यह है कि हमारे बुद्धिजीवी इस पूरे मुद्दे का विश्लेषण करते हुए सेना की कार्रवाई के दौरान हताहत लोगों की संख्या, मंदिर को हुए नुकसान, मंदिर की पवित्रता और सिखों की आहत भावना पर तो ध्यान देते हैं; पर इस ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पाते कि चरमपंथी क्रूरता की किस हद तक जा पहुँचे थे; और किसी देवता की तरह पूजा जा रहा भिंडरौवाले किस

तरह से राक्षसी वृत्ति में संलग्न था। ऐसा नहीं था कि इंदिरा गांधी समस्या सुलझाने की कोशिश नहीं कर रही थीं। सच तो यह है कि भिंडरौवाले ने समझौते का प्रस्ताव ठुकरा दिया था। शांतिपूर्ण समाधान की तलाश में कई बार सैनिक कार्रवाई को खारिज किया जा चुका था। पर इंदिरा गांधी ने आखिरी फैसला ठीक समय पर लिया; क्योंकि अगर वे कुछ दिन और रुक जातीं और जून, 1984 के शुरू होते ही सेना ने हलचल न शुरू की होती, तो देश के एक और बँटवारे की साजिश ज्यादा भयावह रूप में सामने आने वाली थी। ऑपरेशन ब्लू स्टार से कुछ ही समय पहले 'खालिस्तान पासपोर्ट', 'डाक टिकट' और 'खालिस्तान डॉलर' की कहानी जगजीत सिंह चौहान के नेतृत्व में ब्रिटेन में बैठकर लिखी जा चुकी थी। न्यूयॉर्क टाइम्स में 'स्वतंत्र सिख राज्य' का विज्ञापन छपवाया जा चुका था। कुछ ही दिनों बाद स्वतंत्र खालिस्तान देश की घोषणा की जाने वाली थी।

भिंडरौवाले की योजना जानकर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति थरा उठेगा। सेना की कार्रवाई में एक दिन की भी देरी होती तो भिंडरौवाले की योजना स्पष्ट थी कि 5 जून को अमृतसर में चार हजार हिंदू बुद्धिजावियों, जिनकी ब्लू लिस्ट तैयार हो चुकी थी, का कत्ल कर दिया जाएगा; और इसके बाद बाकी के हिंदू अपने आप ही पंजाब से पलायन करने लगेंगे। इसके लिए पंजाब भर के प्रमुख गुरुद्वारों में हथियार और प्रशिक्षित उग्रपंथी भेजे जा चुके थे। सोचिए कि भिंडरौवाले इस काम में सफल हो जाता तो क्या होता! अलबत्ता, एक चूक सेना से जरूर हुई। सेना अंदाजा नहीं लगा सकी कि स्वर्ण मंदिर में हथियारों का जखीरा कोई मामूली नहीं, बल्कि यहाँ एंटी टैंक हथियारों से लेकर रॉकेट लांचर तक मौजूद थे। सेना का खुफिया तंत्र यह सब पता करने में सक्षम था, पर उसको इस बात का गुमान ही नहीं था कि अपने ही देश में देश के विरुद्ध युद्ध की इतनी बड़ी तैयारी भी की जा सकती है। सेना को चीजें ठीक से पता होतीं तो उसकी कार्रवाई की रणनीति भी कुछ अलग होती; और इतने बड़े पैमाने पर जान-माल के नुकसान की संभवतः नौबत ही न आती। 6 जून, 1984 की सुबह सैनिक कार्रवाई की कामयाबी की सूचना आर. के. धवन ने श्रीमती इंदिरा गांधी को जब दी तो उनके मुँह से बेसाव्ता यही निकला—“हे भगवान, उन लोगों ने मुझे यही बताया था कि कोई हताहत नहीं होगा।” स्पष्ट है कि इंदिरा गांधी बिलकुल नहीं चाहती थीं कि जन-धन की कोई हानि हो। जन-धन के नुकसान की आशंका के चलते इसके दो महीने पहले ही 'ऑपरेशन सनडाउन' चलाने



के सेना के प्रस्ताव को उन्होंने सिर्फ इसलिए खारिज कर दिया था, क्योंकि राँ के अधिकारी ठीक से यह नहीं बता पाए कि इस ऑपरेशन में कितने आम नागरिक मारे जाएँगे।

वैसे, सही परिप्रेक्ष्य में सेना को भी दोष देना बहुत उचित नहीं है, क्योंकि उसने स्वर्ण मंदिर परिसर में कदम रखा तो उग्रपंथियों के साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार नहीं किया। सेना की पूरी कोशिश थी कि मंदिर की पवित्रता को कोई नुकसान न हो। भिंडराँवाले के लोगों ने क्रूरता की हदें पार कर दीं; और कमांडो एक-एक कर मारे जाने लगे तो विवश होकर सेना को अपना तरीका बदलना पड़ा और अंततः टैंक बुलाने पड़े।

6 जून, 1984 को रोज की तरह सुबह तो हुई, पर हरमंदिर साहिब की दरकी हुई दीवारें खून के छीटों से लाल थीं। ऑपरेशन ब्लू स्टार की रक्तरंजित कामयाबी के साथ खालिस्तान आंदोलन खत्म हो गया, पर पाकिस्तान को अब भी विश्वास है कि इसे दुबारा हवा दी जा सकती है। अलगाववादी नेताओं को बुलाकर उनका स्वागत-सत्कार वह आज भी जब-तब करता ही रहता है। विदेशों में बसे सिखों के कुछ समूह भी खालिस्तान आंदोलन को जिंदा करने की कोशिश करते रहते हैं। ऑपरेशन ब्लू स्टार के 31 साल बाद अगर भिंडराँवाले को सिखों का एक समूह संत का दर्जा देता है और शेष सिख समुदाय कोई किंतु-परंतु नहीं करता, तो जाहिर-सी बात है कि भिंडराँवाले के खालिस्तान के सपने को वह आज भी जायज मानता है।

असल सवाल है कि आज का पंजाब कहाँ खड़ा है? क्या खालिस्तान की चिनगारी के फिर से भड़क सकने की कोई संभावना बची हुई है?

जवाब ज्यादा मुश्किल नहीं है। ऑपरेशन ब्लू स्टार की जितनी भी निंदा की जाय, पर इसने चरमपंथियों के देश बाँटने के सपने को दिवास्वप्न से ज्यादा महत्त्व का अब नहीं रहने दिया है। इस घाव की टीस जरूर बची हुई है; पर देश को जो घाव देने की तैयारी चल रही थी, उसके बरक्स ऑपरेशन ब्लू स्टार नासूर बन चुके एक फोड़े पर नशतर लगाने से ज्यादा और कुछ नहीं था। इसका फलितार्थ आज इस रूप में है कि तमाम किंतु-परंतुओं के बावजूद खालिस्तान की माँग ऑपरेशन ब्लू स्टार की साल-दर-साल मनाई जाने वाली बरसी पर रस्म अदायगी भर रह गई है। इंदिरा गांधी की हत्या की जो प्रतिक्रिया पूरे देश में हुई, उससे भी चरमपंथियों को समझ में आ गया है कि वे जो चाहेंगे, वही नहीं होगा, उससे उल्टा भी हो सकता है।

खालिस्तान की माँग उठाने वाली किसी भी आवाज में अब वह अपील नहीं बची है कि आज का आम सिख नौजवान जान हथेली पर रखकर आतंकी बनने को तैयार हो जाय। इसे हम हाल में हुए किसान आंदोलन की घटना से कुछ और बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

9 अगस्त, 2020 को संसद द्वारा पारित कृषि सुधार से संबंधित तीन अधिनियमों को रद्द कराने के लिए किसानों का आंदोलन शुरू हुआ। इसमें पंजाब के किसान प्रमुख रूप से शामिल हुए। भीड़ बढ़ती गई और डेढ़-दो महीने बीतते-बीतते आंदोलन के जमावड़े में कुछ ऐसे चेहरे दिखने शुरू हुए, जिन पर खालिस्तान समर्थक होने का आरोप रहा है। एक संगठन ने सिंधु बॉर्डर पर मुफ्त पगड़ी वितरण का कार्यक्रम रखा तो उसमें भिंडरॉवाले और पंजाब में अलगाववाद का समर्थन करने वाले उसके साथियों का महिमामंडन करने वाली पुस्तक 'शहीद-ए-खालिस्तान' भी बाँटी गई। किसान आंदोलन पर खालिस्तानी मदद के आरोप लगने लगे। कनाडा, ब्रिटेन, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी भारतीयों को किसानों के समर्थन में रैलियाँ निकालते हुए देखा गया। असर यह हुआ कि कैलिफोर्निया के फ्रेस्नो काउंटी में 7 फरवरी, 2021 को नेशनल फुटबाल लीग शुरू होने से पहले भारतीय किसानों के विरोध प्रदर्शन का तीस सेकेंड का एक विज्ञापन दिखाया गया। इन चीजों में कुछ-कुछ वैसी ही छायाएँ देखी जानी स्वाभाविक थीं, जैसी कि खालिस्तान आंदोलन के दौरान बाहर से मिल रहे सहयोगों के फलस्वरूप दिखाई दे रही थीं। कुछ दिनों बाद केंद्र सरकार की दो खुफिया एजेंसियों, राँ और आईबी, ने रिपोर्ट दी कि खालिस्तान कमांडो फोर्स के बेल्जियम और ब्रिटेन में बैठे साजिशकर्ताओं ने दिल्ली बॉर्डर पर किसान आंदोलन के नेताओं को टारगेट करते हुए एक किसान नेता की हत्या करने की योजना बनाई है; और इसका ठीकरा वे सरकारी एजेंसियों या एक राजनीतिक पार्टी पर फोड़कर देश में हिंसा फैलाने की फिराक में हैं। सत्ताधारी दल को मौका मिला तो उसने भी आंदोलन को कमजोर करने के लिए इसे खालिस्तान समर्थक बताना शुरू कर दिया। खालिस्तानियों की सक्रियता को 26 जनवरी की उस घटना से भी जोड़ा गया, जब किसान रैली के दौरान कुछ लोगों ने लाल किले पर निशान साहिब और किसानों का झंडा लहराया। बाद के दिनों में एक घटना यह हुई कि संयुक्त किसान मोर्चा ने किसान संघ के नेता रूल्डू सिंह मानसा को 15 दिनों के लिए इसलिए निर्लंबित कर दिया कि उन्होंने अपने भाषण में जरनैल सिंह भिंडरॉवाले का नाम लिए

बिना उसके खिलाफ कुछ बातें कही थीं। दिलचस्प है कि उसी भाषण में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के खिलाफ उन्होंने जो बोला, उस पर सिख नेताओं ने कोई आपत्ति नहीं जताई।

बात साफ समझ में आती है कि किसान आंदोलन में खालिस्तान समर्थक कुछ तत्त्व भी शामिल रहे हैं, उन्होंने अपने ढंग की कुछ हरकतें भी करने की कोशिश की, पर कामयाब नहीं हो सकते थे, क्योंकि 'वे दिन हवा हुए जब खालिस्तानी पसीना गुलाब था'। मतलब कि ऐसा कतई नहीं माना जा सकता कि पूरा किसान आंदोलन खालिस्तान समर्थक था। देश के तमाम हिस्सों के लाखों किसान इसमें शामिल थे; और ऐसे में भीड़ में हर तरह के लोग दिखाई दे ही सकते हैं। इससे बस इतना ही कहा जा सकता है कि सिख समुदाय के एक हिस्से में आज भी भिंडरावाले और खालिस्तान की चाह जिंदा है; पर उसमें स्पष्ट मुखरता और तेज हरकत का बल नहीं है। भीड़ देखकर थोड़ी देर के लिए उभरने वाला जोश भर इसे कहा जा सकता है। कुल निष्कर्ष यही है कि सपने और हकीकत का फर्क वृहत्तर सिख समुदाय को धीरे-धीरे ही सही, समझ में आने लगा है। अपवाद अब भी मौजूद हैं, पर अपवादों से समाज की धारा नहीं बदलती।

ऑपरेशन ब्लू स्टार से सबक सेना ने भी लिया है कि अपने लोग कितने ही देश विरोधी हो जाएँ, पर संबंधों के ताने-बाने में अंततः ऐसी सैनिक कार्रवाइयों का नुकसान अपने देश के तमाम निर्दोष लोगों को भी भुगतना पड़ता है। मनमोहन सिंह की सरकार में गृहमंत्री पी. चिदंबरम ने नक्सली समस्या से निपटने के लिए फौजी कार्रवाई का सुझाव दिया था। उस समय जनरल वीके सिंह ने यह कहकर इसे खारिज कर दिया था—“फौज अपने लोगों के खिलाफ नहीं लड़ती। एक बार गलती कर चुके हैं, अब नहीं होगी।”

किसी घटना-परिघटना के हर पहलू को ठहर कर देखना जरूरी होता है, तभी वास्तविक निहितार्थ और फलितार्थ का अंदाजा मिल पाना भी संभव हो पाता है। यह सही है कि ऑपरेशन ब्लू स्टार के विरोध में चरमपंथी प्रतिक्रियाएँ एक दशक बाद तक कुछ तेज और बाद में छिटपुट मिलती रही हैं; पर समय के साथ अधिसंख्य सिखों को यह बात भी समझ में आने लगी है कि स्वर्ण मंदिर पर सैनिक कार्रवाई को सिख धर्म पर हमले की संज्ञा देना उचित नहीं है। इसी कारण से गहरी टीस छोड़ने के बावजूद और तमाम कोशिशों के बाद भी ऑपरेशन ब्लू स्टार समाज को तोड़ने, किसी

धर्म के प्रभुत्व या धर्म के आधार पर सिख राष्ट्र का प्रतीक नहीं बन सका। इस कार्रवाई से जो नुकसान हुआ उसे नकारा नहीं जा सकता; परन्तु उन परिस्थितियों में वैसी कार्रवाई न की जाती तो उसका विकल्प और क्या हो सकता था? इस पर ऑपरेशन ब्लू स्टार के विरोधी हमारे बुद्धिजीवी भी आज तक दो-टूक बात नहीं कर सके हैं। बातचीत और संवाद के समाधान सुझाने वालों को समझना चाहिए कि ऐसे समाधान बार-बार निष्फल हुए थे, तभी सेना को कमान थमाने की नौबत आई थी।

पं. क्षितीश कुमार वेदालंकार ने समस्या के हर जरूरी पहलू पर अपनी उँगली रखी है। उनके लिखे से गुजरना उस समय के दृश्यों को आँखों के सामने तैरते हुए देखने जैसा है। उनका विश्लेषण अप्रतिम है। आज भी उनसे असहमति का कोई कारण नहीं दिखाई देता। तार्किकता, बेबाकी और पूरी तथ्यात्मकता के साथ रखी गई उनकी वे बातें इतने वर्षों बाद अब भी उतनी ही गंभीरता से पढ़ी जाने लायक हैं। जाहिर है, वर्षों बाद 'तूफान के दौर से पंजाब' का पुनःप्रकाशन निश्चित रूप से एक आवश्यक पहल है।

जनवरी 2022